



नारी संतों की दार्शनिक चेतना

प्रिया भसीन

एस.सी.डी. राजकीय कॉलेज

लुधियाना, पंजाब, भारत

शोध संक्षेप

भारत में दर्शन शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा रही है। वास्तव में दर्शन में धारणाओं को निश्चित करने की शक्ति है। वह जीव, जगत, ब्रह्म, जीवन और मृत्यु पर अपने विचार व्यक्त करता है। दर्शन का जन्म झोपड़ी में होता है और प्रश्न उठाता है 'जीवन क्या है।' भारतीय साहित्य का प्रथम रूप वैदिक मन्त्रों में प्राप्त होता है। यहाँ से विकसित होती हुई चेतना ने अनेक सोपानों को पार किया। इसमें स्त्री तत्त्व चिंतकों ने भी अपना योगदान दिया। प्रस्तुत शोध पत्र में नारी संतों के दार्शनिक चिंतन पर विचार किया गया है।

भूमिका

भारतीय धार्मिक जगत में यह परम्परा चली आयी है कि लोग प्रेरक तत्व के बीज की खोज वेदों में जरूर करते हैं। अग्नि, इन्द्र, उषस्-पूषन् आदि वैदिक सूक्तों में तत-त्, ऋषियों द्वारा देवों के प्रति परम अनुराग और परम सम्मान की भावना प्रस्तुत की गई है। इसी भावना को भक्ति का नाम दिया गया है। यद्यपि इन सूक्तों में भक्ति का सुस्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि भक्तिभाव की प्रस्फुट प्रतीति होती है। अस्तु, वैदिक साहित्य में ही भक्ति का अंकुर उन्मिषित होता हुआ दृष्टिगत होता है। औपनिषदिक साहित्य में भक्ति का आलोकवान् वर्णन मिलता है।¹

“भक्ति शब्द भञ् सेवायाम् धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से निर्मित होता है, जिसका अर्थ है अनुराग, श्रद्धा, सम्मान, सेवा-पूजन। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाव्य वैष्णव भक्ति-भावना की विकास की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। जानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, रामाश्रयी, कृष्णाश्रयी संतों भक्तों और कवियों ने भक्ति को स्तुत्य ऊंचाई का संस्पर्श

कराया और सांस्कृतिक सद्भाव का अद्भुत परिवेश निर्मित और प्रस्तुत किया। कई विद्वानों का ऐसा मानना है कि हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन के सर्वांगीण विकास की अभिव्यक्ति पूर्व मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में हुई है। संपूर्ण सांस्कृतिक चेतना के परिचायक साहित्य की सृष्टि करके जहां हिन्दी के भक्त संतों ने देश का गौरव बढ़ाने में अपेक्षाकृत अधिक योगदान दिया है, वहीं नारी संतों ने भी अपना अवदान देने में कोई कमी नहीं छोड़ी। नारी संतों ने दर्शन पर अति गम्भीर अध्ययन किया।²

“दर्शन शब्द दृश् धातु में ल्युट प्रत्यय के लगने से निर्मित हुआ है जिसका शाब्दिक निर्वचन के आधार पर अर्थ है-जिसके द्वारा देखा जाए।³ कतिपय शब्दकोशों में यह माना गया है कि जिसके द्वारा यथार्थ तत्व का ज्ञान होता है। उसे दर्शन कहते हैं। हम कौन हैं ? इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई। सृष्टि का कौन कारण है ? जीवन को सुचारु रूप से बिताने के लिए कौन-सा सुंदर साधन मार्ग है ? आदि प्रश्नों का समुचित उत्तर देना दर्शन का प्रधान ध्येय है। वस्तुतः दर्शन



ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है, जो आत्मा के समक्ष संपूर्ण रूप से प्रकट होता है। दर्शन का लक्ष्य बड़ा विराट है। वह मानव को व्यापक धरातल प्रदान करता है उसे वैयक्तिक क्षुद्रता से ऊपर उठाता है। जीवन और दर्शन का बड़ा निकट का संबंध है। दर्शन ही हमें ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष आदि के स्वरूप का संदर्शन कराता है और संसार के बंधन से मुक्ति का मार्ग दर्शाता है।

नारी संतों की दार्शनिक चेतना

भारतीय दर्शन की मूल चेतना आत्म-साक्षात्कार है। यह आत्म-साक्षात्कार अनुभव के अन्तः से उन्मिषित होता है और इसी से मानव विद्या माया और अविद्या माया की पृथकता को संधानित करके आत्म विद्या का वरण करता है। वह जीवन की नश्वरता, लोगों की क्षणिकता आदि को जान लेता है तथा अपने मूलस्वरूप (आत्मतत्व) को पहचानने का प्रयास करता है, क्योंकि आत्मा के माध्यम से ही परमात्मा का दर्शन प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ यह इंगित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सकल संत साहित्य आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से परमात्मा की अनुभावना का प्रस्फुटन और प्रोज्ज्वल प्रकाश है। संत कवयित्रियों ने सच्चिदानंद को अंग शीर्षकाधीन सहजोबाई ने अनांदि, अनंत शक्ति ब्रह्म का निरूपण किया है। यूँ तो निर्गुण मत में ब्रह्म का स्वरूप वर्णनातीत है, फिर भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन्होंने उस दिव्य शक्ति का कुछ न कुछ आभास अवश्य दिया है, जो इन शब्दों में प्राप्त है-

“वे वैसा वोहि जाने,

वोहि आहि, आहि नहिं आने।”⁴

सहजोबाई ने सच्चिदानंद के स्वरूप का निरूपण बड़े अनुपम रूप से किया है-

“रूप वरन वाके नहीं,

सहजो रंग न देह

मीत इष्ट वाके नहीं

जाति पांति नहिं गेह

आदि अंत ताके नहीं

मध्य नहीं तेहि मांहि,

वार-वार नहिं सहजिया

लघु दीर्घ भी नाहिं।”⁵

ऐसे परमात्मा को आत्मानुभूति द्वारा ही पाया जा सकता है।

“आपा खोजे पाइये

और जतन नहिं कोय

नीर छीर निर्ताय के,

सहजो सुरति समाया।”⁶

निर्गुण-सगुण संशय निवारण अंग में सहजोबाई ने निर्गुण और सगुण की तुलना की है। निर्गुण मत को अपनाते हुए भी ये कबीर की ब्रकोक्ति, उपहास, कटाक्ष इत्यादि के विचार से पृथक है। चरणदासी सम्प्रदाय के कृष्ण को भागवत के नायक के रूप में संपूर्ण सांसारिक रूप में सांसारिक क्षेत्र का प्रेरक स्वीकार किया है। उनकी कृष्ण के प्रति ज्ञान-मूलक आस्था, सूफीमत का पुट और सगुण मत का सैद्धांतिक मतभेद नहीं है, जो कबीर का अन्य संतों की वाणी के लक्षण है। सहजोबाई पर अपने गुरु का प्रबल प्रभाव है। उसके लिए सगुण-निर्गुण एक समन्वित ब्रह्म है।

“कहा कहूँ कहा कहि सकूँ,

अचरज अलख अभेव

सुनो अचंभौ सौ लगे,

सहज ब्रह्म अलेख

वहीं आप परगट भयो,

ईसुर लीला धार,

माहि अजुध्या और ब्रज

कौतुक किए अपार ॥”⁷



सहजोबाई ज्ञान और योग से परे केवल एक भक्त कवयित्री है ज्ञान द्वारा योग से ज्यादा उनकी आस्था प्रेम और भक्ति में अधिक है-

“जोगी पावै जोग सूं
जानी लहै बिचार।।” 8

भक्तिकाव्य में केवल तुलसीदास का नाम समन्वयवादी कवि के रूप में लिया जाता है। किंतु सहजोबाई को भी समन्वयवादी कवयित्री कहे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। सहजप्रकाश का अंत भी समन्वयवाद के साथ ही होता है।

दयाबाई के ब्रह्म के रूप साकार के निकट नहीं है। उनके ब्रह्म का रूप कबीर के सतगुरु के अधिक निकट है। वह गुणातीत, निर्गुन अलख, निरंजन है। वह सर्वव्यापी है, उसी के सूत्र में बँधी सृष्टि का परिचालन होता है। दयाबाई के शब्दों में-

“वही एक व्यापक सकल,
ज्यों मनिका में डोर।”9

माला की मणिकाएँ जिस डोर में गुँथी रहती है, वही उस माला के अस्तित्व का आधार है। सृष्टि रूपी मणिका की संबद्धता तथा नियमन ब्रह्म पर निर्भर है। वह कबीर के सतगुरु के समान उस जगत का वासी है। जहाँ अनन्त भानु की अद्भुत ज्योति का आलोक फैला रहता है उनका परब्रह्म उस सत्यलोक का वासी है।

“जहाँ काल अरु ज्वाल नहिं,
सीत उष्ण नहिं बीर,
दया परसि निज धाम कूँ,
पायो भेद गंभीर।”10

कवि तथा ब्रह्म के संबंध स्थापन के मूल में ही ब्रह्म का चेतन अंश है, इसलिए आत्मा और परमात्मा में द्वैत भावना नहीं है।

“चेतन रूपी आत्मा
बसै पिण्ड ब्रह्मंड

ना करता ना भोगता

अद्वै अचल अखंड।।”11

जहाँ इनकी रचनाओं में ब्रह्म के सगुण रूप के प्रति उद्गार है, उनमें भक्ति-मार्ग की सभी प्रधान भावनाओं का स्पर्श है। दयाबाई ने अपनी रचना ‘विनयमलिका’ में निर्गुण ब्रह्म की उपासना का वर्णन संत मत के सिद्धांतों पर आधारित है। ‘विनयमलिका’ में विष्णु के अनेक अवतारों की कथाओं का वर्णन है। चरणदास जी पर भागवत का प्रभाव था। उन्होंने अपनी साधना में कृष्ण को परम ब्रह्म का रूप मानकर उनसे संबंधित अनेक लीलाओं को ब्रह्म की लीलाएँ माना है। भागवत के कृष्ण और संत मत के ब्रह्म में उनके अनुसार मूलतः कोई अंतर नहीं है। सहजोबाई के पदों में भी इस प्रकार के आभास यत्र तत्र मिलते हैं पर उनके कृष्ण का अस्तित्व ब्रह्म से अलग नहीं है, जहाँ उन्होंने ब्रह्म के उसी रूप में किया है जो निर्गुण मत में मान्य थे।

दयाबाई के विषय पर विस्तार से प्रकाश डालने पर हमें यह पता चलता है कि यह निर्गुण ब्रह्म की उपासिका थीं। इनकी रचनाओं पर निर्गुण ब्रह्म का भी प्रभाव है। दयाबाई की उपासना में योग और ज्ञान-तत्त्व प्रधान है। योग-नाम स्मरण से आरम्भ होकर अनहद नाद तथा ज्योति दर्शन पर समाप्त होता है। अहर्निश नाम-स्मरण योग का प्रथम सोपान है। जब मन की यह अवस्था हो जाती है और तभी जीव ब्रह्मरन्ध्र में होने वाले अनहद संगीत को सुनकर निर्वाण पद प्राप्त करता है। साधना के इस रूप के अतिरिक्त दयाबाई की साधना में और कुछ नहीं है।

कवयित्रियों ने जीवतत्त्व पर भी बड़ी गंभीरता-विशदता के साथ अपना अभिमत व्यक्त किया है। सामान्य रूप से मुक्ताबाई जीवात्मा और परमात्मा में किसी प्रकार का अंतर नहीं मानती



हैं फिर भी वे कहती हैं कि जब आत्मतत्त्व मायाच्छादित होकर कर्मों के बंधन में बँध जाता है, तब वह परमात्मा से विलग हो जाता है। यदि व्रत की पूर्णता पर विचार किया जाए तो जीव और परमतत्त्व में भेद नहीं है लेकिन शरीर धर्म को दृष्टि में रखने पर आत्मा के अनेक वर्ण और अनेक रूप हैं। वास्तविकता तो यह है कि समस्त जीव काया के अधीन है और वे बंधनग्रस्त हैं, इसलिए इन्द्रामती मानती है कि कर्मों के कारण जीव की उत्पत्ति और मृत्यु होती है।

बावरी साहिबा ने भी यही बताया है कि जीव परवश-ब्रह्मवश होता है। वह स्वतंत्र एवं शक्तिमान नहीं है क्योंकि ब्रह्मजीव के मन में बसता है। इस संसार में असंख्य जीव हैं और असंख्य धर्म-कर्म हैं। यह जीव बिना गुरु के ब्रह्म को पहचान नहीं सकता है।

पार्वती का भी जीवन विषयक दृष्टिकोण वेदान्तानुरूप है। वे मानती हैं कि ब्रह्म जीव में द्वैतता केवल भ्रम के ही कारण भासित होती है। सोने और कुण्डल, जल और तरंग पत्थर और प्रतिमा में जो द्वैत भ्रम है। वैसा ही द्वैत भ्रम जीव और ब्रह्म में है। सब एक ही ब्रह्म से पैदा होते हैं आदि और अंत में मात्र भ्रम है इसीलिए दयाबाई जीव को उद्बोधित करते हुए कहती हैं कि हे जीव! तू भ्रम में मत पड़, तू राम नाम का जाप कर।

गवरीबाई ने भी जीव की अज्ञानता तथा उसकी शंकाकुलता का रेखांकन किया है। उन्होंने एक पद में जीव को जगाने का उपक्रम किया तथा अन्यत्र एक स्थान पर जीव की आतुरता को व्यंजित किया है।

बहिणाभाई ने भी यह माना है कि ब्रह्म ने जीव की संर्जना करके उसे काया में प्रतिष्ठित कर

दिया और मुक्ति के लिए अनुपम गुरु को भेज दिया।

सामान्य अर्थ में जगत् पृथ्वी का वह अंश है जिसमें जीव या प्राणी चलते फिरते या रहते हैं और दार्शनिक अर्थ में जगत् का अर्थ चेतन सृष्टि है।

सहजोबाई के सत् वैराग जगत् मिथ्या को 'अंग' के दोहों में सत्य और संसार कह कर क्षणभंगुरता का वर्णन मिलता है। सांसारिक जीव अज्ञानतावश इस मिथ्या जगत् में उलझे रहते हैं।

सहजोबाई के शब्दों में

“जगत् तरैया भोर की

सहजो ठहरत नाहिं

जैसे मोती ओस की

पानी अँजुलि मांहि।”¹²

प्रसिद्ध है कि भोर का तारा सूर्योदय के प्रकाश में लीन हो जाता है। उसी प्रकार यह संसार अज्ञानजन्य भावों के साथ ही चलता है। ज्ञान की प्रतीति के पश्चात् माया मोहजन्य संसार का अस्तित्व नहीं रहता। इसी प्रकार दयाबाई ने भी इस संसार को ओस की क्षणिकता के समान माना है।

“जैसे मोती ओस को तैसो यह संसार

बिनसि जाय छिन एक में 'दया' प्रभु उर धार।”¹³

जिस प्रकार सूर्य की तपन से ओस समाप्त हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान के प्रकाश में सांसारिक मोह-माया के अज्ञान जन्य भाव समाप्त हो जाते हैं।

मुक्ताबाई ने इस संसार को मिथ्या, भ्रामक माना है। उसके अनुसार संसार का कोई अस्तित्व नहीं है।

“वह जग जैसे सुपन है सुनहु वचन परमान।”¹⁴

जिस प्रकार सपना सिर्फ एक काल्पनिक धारणा है। इसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह सिर्फ



मानव के मन में उत्पन्न होने वाली एक कल्पित धारणा मानी गयी है। उसी तरह यह जगत भी सपने की तरह एक काल्पनिक एवं भ्रामिक है। इसका भी कोई अस्तित्व नहीं है। यह नश्वर है और इस नाशवान् जगत से मोह नहीं करना चाहिए। यह जगत झूठा है। इससे मोह करने की बजाय गुरु से मोह करना चाहिए क्योंकि गुरु ही मनुष्य को परमात्मा से मिलाता है जिससे मनुष्य भवसागर को पार कर सकता है अर्थात् मानव का कल्याण हो सकता है।

“झूठो जगत मोह नहीं करिये, मोकूँ भज भवसागर तारिए।”¹⁵

“जानी को सांसारिक मोह माया एवं बंधन अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाते केवल परमात्मा से तादात्म्य ही मिथ्या संसार से मुक्ति दिला सकता है।”¹⁶

‘वैराग का अंग’ में संसार की नश्वरता तथा क्षणभंगुरता का चित्रण है। आध्यात्मिक लों की लगन में लीन साधक को संसार तथा उससे संबंधित भावनाएँ, सुख-संतोष इत्यादि सभी वस्तुएँ क्षणिक निरर्थक तथा सारहीन प्रतीत होती है। संसार का कोई भी व्यक्ति अपना नहीं है। सांसारिकता में लिप्त ज्ञान, स्वप्न को सत्य समझने के समान मूर्खता है। सराय में वास की भाँति यह क्षणिक है। जगत माया है, मिथ्या है। पुलीबाई ने ब्रह्म को सबका स्वामी मानते हुए जीवन और संसार को क्षणिक बताया है। उन्हें सब कुछ कच्ची मिट्टी के घड़े, धुएँ का धौलहर, लालू की दीवार की भाँति क्षणिक आभासित होता है।

माया का सिद्धांत भारतीय अध्यात्म क्षेत्र की सबसे प्रमुख विशेषता है। माया शब्द की व्युत्पत्ति ‘मा’ धातु से मानी जाती है जिसका शाब्दिक अर्थ है-परिधि, सीमा या माप। कोई ऐसी

कृति, रचना या रूप जिससे कोई धोखे या भ्रम में पड़ते हैं-माया कही जाती है या जो विस्मयकारी है, जो भ्रामक रहस्यमय, जघन्य कारण शक्ति, अतर्क-सम्मत, छलनीय है, उसे माया का नाम दिया गया है। इस प्रकार माया वह आवरण है जो आत्मा और परमात्मा के मध्य भेद का पर्दा डालकर उसे अपने सत्य स्वरूप से पृथक् करती है तथा नाना सांसारिक कर्मों में आलिप्त करती है वह भ्रम, अज्ञान तथा धोखा है। भारतीय वाङ्मय में माया पर सविस्तार विचार-विमर्श हुआ है। वैदिक काल से लेकर आज तक माया का अनुचिंतन किसी न किसी रूप में होता आ रहा है। आचार्य शुक्ल ने माया को भ्रमरूप माना है।

पुलीबाई ने माया को परम-तत्त्व की शक्ति माना है। इसके मतानुसार वह मिथ्या न होते हुए भी उपेक्षणीय आवश्यक है यदि उसकी अपेक्षा न की जाय तो जीव भ्रमवश उसके ही आकर्षणों को अपना लक्ष्य समझकर भटकते रहेंगे और लक्ष्य (अकाल पुरुष) के महत् ऐक्य को भूल बैठेंगे।

महदम्बा ने माया को त्रिगुणात्मिका शक्ति सम्पन्न माना है। उनकी दृष्टि में माया क्षणभंगुर-अल्पकालिक है। वह मृग-मरीचिका के समान सत्य न होते हुए सत्य प्रतीत होती है। माया इतनी शक्तिमान है कि समस्त जीव उसके समक्ष विनय भाव से खड़े दिखायी पड़ते हैं, जबकि वे अपने नियामक को भूल गये हैं। उसने सुर-मुनि-मानव, ब्रह्म-विष्णु-महेश सभी को अपने वश में कर रखा है। लेकिन जहाँ पर ब्रह्म की सत्ता प्रकट होती है, वहाँ माया की अस्मिता का विनाश हो जाता है।

संतों की बानियों में हमें कहीं पर भी मोक्ष के स्वरूप का शास्त्रीय विवेचन नहीं मिलता है। उसका शास्त्रीय विवेचन करना उनका लक्ष्य भी



नहीं था। वे कोई दार्शनिक न थे। उनका मुख्य लक्ष्य पाप में लिप्त मानवों को संमार्ग पर लाना था। इनकी दृष्टि में संसार ही मानव को पथ भ्रष्ट करता है।

सहजोबाई की आस्था लोकमानस की भाँति किसी स्वर्ग में नहीं है। इसीलिए वे भगवान् से जानना चाहते हैं कि स्वर्ग है कहाँ? जब तक व्यक्ति को तत्वज्ञान नहीं होता है, तभी तक तरने-तारने की बात होती है। तत्व-ज्ञान के पश्चात् तो सभी में ईश्वरीय सत्ता के सन्निवेश की प्रतीति होती है चूँकि सहजो ने इस शाश्वत सत्य को समझ लिया है, इसीलिए वे बैकुण्ठ की चर्चा नहीं करते हैं। प्रतीति से जन्मता है जो साधक 'आपा' को मिटाकर राम से प्रीति करता है वही उनकी समीपता प्राप्त कर तदाकार होता है। पुलीबाई ने वैष्णवों की भाँति चार प्रकार की-सालोक्य, सारूप्य मुक्ति की चर्चा की है।

निष्कर्ष

भक्त कवयित्रियों की वाणी पर अनेक दार्शनिक चिंतन का प्रस्फुट संकेतन प्रभाव देखा जा सकता है। अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शिवाद्वैतवाद, नाथ पंथ, सिद्ध-सिद्धांत आदि की दार्शनिक विवेचना के अन्तर्गत हैं। किन्तु वे अद्वैतवाद की तरफ सर्वाधिक आकृष्ट दृष्टिगत होते हैं, वो तो एक ऐसा दर्शन है जिसे जनमानस ने अनेक धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आरोहों-अवरोहों को झेलते हुए अपने चित्र में समा रखा है। वस्तुतः इसे संतों का अद्वैतवाद न कहकर अद्वैतवाद कहना चाहिए। इसलिए भक्त कवयित्रियों ने आत्मानुभव के आलोक में अपने सहज अद्वैतवाद का भावन करते हुए ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष आदि दार्शनिक तत्वों की विवेचना अत्यन्त सधे विचार और शैली में की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. विनोद कुमार तनेजा, कश्फ (भारतीय चिंतन में अल्पचर्चित महिलाएं), अमृतसर: विभोर प्रकाशन, मार्च 2013, पृष्ठ-65
2. आशा गुप्ता, भक्ति सिद्धांत, इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन, 2007, पृष्ठ-3
3. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी शब्द कोश, प्रयाग: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1965, पृष्ठ-160
4. सहजोबाई, सहजोबाई की बानी, इलाहाबाद: वेलबीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1913, पृष्ठ-2, 6, 10, 14, 15, 44
5. दयाबाई, दयाबाई की बानी, इलाहाबाद: वेलबीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1918, पृष्ठ-2, 6, 7, 18, 24
6. विक्रम सिंह राठौर, संतों एवं भक्तों का जीवन चरित्र, जोधपुर: सूर्यनगरी प्रकाशन, 2005, पृष्ठ-253, 254